Jai Maa Saraswati Gyandayini ISSN: 2454-8367
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer - reviewed, Open Accessed & Indexed)
Web: www.jmsjournals.in; Email: jmsjournals.in@gmail.com
Impact Factor: 5.065 (SJIF)
Vol.6, Issue-II, Oct. 2020
e-ISJN: A4372-3118

जनसंचार माध्यम : विविध समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य_

*डॉ0 अरविन्द कुमार मिश्र
**डॉ0 रवि कुमार मिश्र

सारांशिका

जनसंचार माध्यम सामाजिक यथार्थ है। हम किसी ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते हैं जहां कि जनसंचार माध्यमों का सार्थक और प्रभावशाली हस्तक्षेप नहीं हो। यह सही है कि जनसंचार माध्यमों ने अपने आरंभ से अब तक काफी यात्रा पूरी की है। इसका सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन तो यह है कि यह अब एक दो तरफा प्रक्रिया हो गयी है। जो समूह सूचना ग्रहण कर रहा है और जो सूचना प्रदान कर रहा है उनमें अन्तः क्रिया बढ़ी है, बढ़ती जा रही है। यह पारंपरिक जनसंचार में संभव नहीं था। इस शोध आलेख में हम अपने परिचित प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तक ही स्वयं को केन्द्रित कर रहे हैं। जनसंचार माध्यमों को जनसामान्य कैसे समझता है और समाजशास्त्रीय चिंतन में वे कैसे देखे और समझे जाते हैं, इसे ही इस शोध आलेख में विवेचित करने का प्रयास किया गया है। हम यह जानते हैं कि विविध परिप्रेक्ष्य अपनी प्राथमिकता के अनुसार ही सामाजिक यथार्थ को जानने–समझने का प्रयास करते हैं। उनके सकारात्मक पहलु, उनकी सीमाएं और उनके समन्वय के प्रश्न हमेशा ही महत्वपूर्ण रहे हैं। इस दिशा में क्या संभावनाएं हो सकती हैं, इसे ही जानने समझने का प्रयास इस शोध आलेख में किया गया हैं। पूर्णतया द्वितीयक स्त्रोंतों पर आधारित होना और सोशल मीडिया की चर्चा न करना इस शोध आलेख की सीमा है।

मुख्य शब्दः जनसंचार माध्यम, विविध परिप्रेक्ष्य, प्रकार्यवाद, संघर्ष, नारीवाद।

जनसंचार माध्यम सामाजिक यथार्थ हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि हम किसी ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते जहां कि जनसंचार माध्यम नहीं हों। यह सही है कि समाज में प्रौद्योगिकी के स्तर समान नहीं होते हैं, विकास का स्तर का समान नहीं रहता है, अतः जनसंचार माध्यमों के स्तर पर विविध समाजों में विविधता निश्चित रूप से देखी जा सकती है। पारंपरिक जनजातिय समाजों और समकालीन अत्यन्त विकसित प्रौद्योगिकी वाले समाजों में जनसंचार के तरीके और माध्यम समान होने की कल्पना नहीं की जा सकती है। समाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में हम इस तथ्य से अवगत हैं कि सामाजिक जीवन का आधार दो लोगों के मध्य अन्तः क्रिया और सामाजिक सम्बन्ध है। यह अन्तः क्रिया दो व्यक्तियों के मध्य होती है और इसमें दोनों ही पक्ष की प्रस्थिति और भूमिका लगभग समान होती रही है। जनसंचार माध्यमों की विशिष्टता यह रही है कि इसमें वृहद दर्शकों या श्रोताओं को लक्ष्य रखकर अवैयक्तिक संचार किया जाता है। मीडिया का मतलब मध्य और माध्यम से लिया जाता रहा है। आरंभ में हम प्रिंट मीडिया से ही परिचित थे। बाद का दौर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का रहा है।

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर (समाजशास्त्र) ईश्वर शरण पी.जी.कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज।
** एसोसिएट प्रोफेसर (समाजशास्त्र) नागरिक पी.जी. कॉलेज, जंघई, जौनपुर।
DOI: https://doi.org/10.53724/jmsg/v6n2.02

जब हम मास मीडिया कहते हैं तो हमारा आशय 1860 से 1930 के दौर के गठन वाले वर्षो से होता है। इस दौर में स्थिर चित्र, गतिशील छायांकन (सिनेमा), केबल टेलीग्राफी, वायरलेस टेलीग्राफी, फोनोग्राफ, टेलीफोन, रेडियो एवं टेलीविजन आदि का विकास हुआ है।[1] समकालीन संदर्भ में अगर देखा जाये तो जनसंचार माध्यमों में जो दो पक्ष होता था एक सूचना प्रदाता और दूसरा सूचना ग्रहण करता, उसमें आज सोशल मीडिया के दौर में काफी परिवर्तन आ गया है। आज इस बात की संभावना पुनः हो गयी है कि दोनों पक्ष समान प्रस्थिति और भूमिका में अन्तःक्रिया कर रहे हों। अन्तःक्रिया की नई संभावनाएं विकसित हो गयी हैं। इसके बावजूद नयापन यह है कि आज सूचनाओं की गोपनीयता और निजता पर प्रश्न चिन्ह उठ रहे हैं। अतः अवैयक्तिकता और वैयक्तिकता के साथ इस आयाम में भी जनसंचार माध्यमों का समकालीन परिदृश्य सर्वथा भिन्न है।

आज हम जिस मीडिया समाज में रह रहे हैं, उससे पहले के दौर को एक उदाहरण मात्र से समझा जा सकता है। जनसंचार माध्यमों का विकास बी कुप्पुस्वामी ने सोशल चेंज इन इंडिया में जनसंचार माध्यमों के विकास की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट किया है कि आधुनिक भारत में जनसंचार माध्यम के विकास से पहले जनसंचार में हरिकथा कहने वाले, प्रवचन करने वाले लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका हुआ करती थी।[2] जनजातिय समाजों से आज तक जनसंचार माध्यमों का काफी विकास हुआ है और यह धीरे–धीरे और विकसित होता जा रहा है। संवाद से जन समाज और आज सोशल मीडिया के दौर में हम पहुंच गये हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में हम आधुनिक समाजों के परिप्रेक्ष्य में जनसंचार माध्यमों की भूमिका को विविध समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास कर रहे हैं। यह सामान्य रूप से महसूस किया जाता है कि विविध जनसंचार माध्यम लोगों तक एक साथ सूचना के प्रसारण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। समाचार, विज्ञापन और मनोरंजन इसके परिदृश्य को गढ़ते हैं। हमारी यह सामान्य धारणा विविध समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के समक्ष ठहर नहीं पाती है। इसका कारण यह है कि विविध तरह के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य जनसंचार माध्यमों को लेकर समान दृष्टिकोण नहीं रखते हैं। इस शोध आलेख में विविध समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों में से तीन संरचनात्मक प्रकार्यवादी, संघर्षवादी और नारीवादी परिप्रेक्ष्य से जनसंचार माध्यमों को समझने का प्रयास किया गया है।

सामान्य रूप से समाजशास्त्र में चार तरह के परिप्रेक्ष्यों की चर्चा की जाती है– संरचनात्मक प्रकार्यवादी, मार्क्सवादी, अन्तःक्रियावादी और नारीवादी परिप्रेक्ष्य। इन परिप्रेक्ष्यों के साथ–साथ आजकल उत्तर–आधुनिकता का परिप्रेक्ष्य भी पर्याप्त चर्चित है। संरचनात्मक प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य के सम्बन्ध में सामान्य रूप से यह बताया जाता है कि इसमें व्यवस्था और मूल्यों को ज्यादा महत्व दिया जाता है। समाज की व्यवस्था कैसे बनी रहे, मूल्यों के प्रति सहमति कैसे बनी रहती है इन्हें ही केन्द्र में रखकर अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र में यह परिप्रेक्ष्य अत्यन्त प्राचीन और लोकप्रिय है। टाल्कट पार्सन्स, मर्टन जैसे विचारक इस परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित हैं। मुख्य रूप से कार्ल मार्क्स को ध्यान में रखकर और उन जैसे समान विचारकों को ध्यान में रखकर मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में सामान्य रूप से यह स्पष्ट किया जाता है कि समाज में जो व्यवस्था हमें दिखती है, वह सहज और स्वाभाविक नहीं है। समाज व्यवस्था शोषण पर आधारित है। मूल्यों के प्रति जो सहमति दिखती है वह वास्तव में गढ़ी गयी है। इस नजरिये से मार्क्सवादी विचारक अपने विचारों को रखते हैं। नारीवादी परिप्रेक्ष्य का केन्द्रण इस पर है कि नारी से सम्बन्धित

पहलूओं को कितना महत्व दिया जाता है, नारी के प्रति जो सुदृढीकरण हैं, पूर्वाग्रह हैं उनको कैसे देखा जाता है, स्त्रियों के मुददे को लोग कैसे समझते हैं। यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि स्वयं नारीवादी चिंतन में भी अश्वेत नारीवाद और उत्तर–आधुनिक नारीवाद जैसे विशिष्ट परिप्रेक्ष्य हैं। उनका भी महत्व है। अन्तःक्रियावादी परिप्रेक्ष्य का सम्बन्ध प्रतीकों, भाषा, भाव–भंगिमाओं आदि से है। यह परिप्रेक्ष्य इन पहलुओं पर स्वयं को केन्द्रित करता है। यह परिप्रेक्ष्य इस तथ्य पर विचार करता है कि लोग किस तरह से अन्तःक्रिया करते हैं और यह अन्तःक्रिया किन–किन तथ्यों से प्रभावित होती है। मीड, ब्लूमर, गॉफमैन आदि ने इस परिप्रेक्ष्य को ज्यादा महत्व दिया है। यह कहा जा सकता है कि उत्तर–आधुनिक परिप्रेक्ष्य का विकास अन्य परिप्रेक्ष्यों की तुलना में बहुत बाद में हुआ है। उत्तर–आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सम्बन्ध में सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि यह परिप्रेक्ष्य मूल्य आधारित आधुनिकता से अपनी असहमति रखती है। उत्तर–आधुनिकता विविध तरह की वास्तविकताओं को स्वीकार करती है। उत्तर–आधुनिकता किसी विशिष्ट प्रारूप या संदर्भ में स्वयं को केन्द्रित करने की जगह विविधता, बहुलता और भिन्नता को महत्व देती है। इस बात की संभावना है कि कोई विचारक अपने वैचारिक परिपक्वता के कारण विविध परिप्रेक्ष्यों में उदधृत किये जाते हों, फिर भी इन परिप्रेक्ष्यों का महत्व है। इस तरह से ये विविध परिप्रेक्ष्य हैं और किसी भी सामाजिक व्यवस्था के विविध पहलुओं को समझने में इसकी भूमिका है। यहां हम जनसंचार माध्यमों की समझ के लिए इन विविध परिप्रेक्ष्यों का उपयोग करेंगें।

आज हम प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के दौर में जी रहे हैं। पहले प्रिंट मीडिया का ही प्रभाव था जिसे हम आमतौर पर प्रेस कहते रहे हैं। इसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता रहा है। संरचनात्मक प्रकार्यवादी विचारक जनसंचार माध्यमों को समाज के लिए आवश्यक मानते हैं। उनका यह दृष्टिकोण है कि जनसंचार माध्यम की विविधतापूर्ण भूमिका समाज व्यवस्था के लिए आवश्यक है। संरचनात्मक प्रकार्यवादी नजरिये से सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि जनसंचार माध्यम मनोरंजनात्मक कार्य करता है। किसी भी समाज के सदस्य समाज में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन तभी कर सकते हैं जब वे मानसिक रूप से तरोताजा हों। कुछ वैयक्तिक अध्ययनों में हमने यह पाया है कि कुछ शिक्षित, सेवानिवृत्त बुजुर्ग अपने आपको क्रॉसवर्ड और सुडोकू में व्यस्त रखते हैं। उनका यह कहना है कि ऐसा करने से वह अपने समय को सार्थक रूप से व्यतीत कर सकते हैं। पहले जब प्रिंट मीडिया का दौर था तब कार्टून और कॉमिक्स और आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का दौर है तब बच्चों में कार्टून चैनल उतने ही लोकप्रिय है। इसके अतिरिक्त धारावाहिकों, सिनेमा, संगीत कार्यक्रमों की दुनिया भी मनोरंजनात्मक दृष्टि से उपयोगी है। जनसामान्य में मनोरंजनात्मक भूमिका को लेकर यह धारणा लोकप्रिय है। इसके अतिरिक्त यह भी सामान्य रूप से महसूस किया जाता है कि जनसंचार माध्यम लोगों में समाचार और जागरूकता प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। संरचनात्मक प्रकार्यवादी नजरिये से यह महसूस किया जाता है कि सामाजिक नियमों और मूल्यों से परिचित कराने और उनके प्रति जागरूकता के प्रसार की दृष्टि से जनसंचार माध्यम बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। यह लोगों को विशेष सामाजिक प्रस्थिति प्रदान करते हैं। वैश्वीकरण के दौर में यह बात आसानी से महसूस की जा सकती है कि जनसंचार माध्यम से विविध संस्कृतियां एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं और मूल्यों का प्रसार भी आसानी से हो सकता है। एडवर्ड

हरमैन एण्ड रॉबर्ट मैक्वेसनी को उद्धृत करते हुए एंथनी गिड्डेन्स ने यह बताया है कि वैश्वीकरण के दौर में जनसंचार माध्यमों ने लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अब सर्वाधिकारवादी राज्य अपने तरीके से कार्य नहीं कर सकते हैं। मानवाधिकार और लोगों के अधिकार अभिव्यक्ति की संभावना ज्यादा बढी है। हालांकि उन्होंने यह भी बताया है कि इसके विपरीत स्थिति भी उभरी है पर संरचनात्मक प्रकार्यवादी नजरिये से यह एक महत्वपूर्ण आयाम है।[3] बहुत पहले 1922 में समाजशास्त्री रॉबर्ट पार्क ने यह स्पष्ट किया था कि अमेरिका में जो प्रवासी रहने के लिए आते हैं उनके प्रथागत व्यवहार को परिवर्तित करने और अमेरिका के लोगों के चिंतन से परिचित कराने में जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने प्रिंट मीडिया अथवा अखबारों की भूमिका की चर्चा की थी।[4] संरचनात्मक प्रकार्यवादी नजरिये से यदि देखा जाये तो यह भी पता चलता है कि भारत में भी बाबूराव विष्णु पराड़कर और माखनलाल चतुर्वेदी ने पत्रकारिता में अपने विविधतापूर्ण योगदान में भारतीय पर्व त्योहारों और उनकी भूमिका से लोगों को परिचित कराने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था। भारत जैसे बहुलतावादी देश में यह संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान है।[5] शैफर ने यह बताया है कि आज के दौर में मीडिया लोगों को प्रस्थिति प्रदान करता है। यह प्रस्थिति किसी मैगजीन के द्वारा सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्तित्व के रूप में चर्चित होने से सम्बद्ध हो सकती है, किस व्यक्तित्व को सर्वाधिक सर्च किया गया है, इससे सम्बद्ध हो सकती है। इस कारण भी एक तरह से सामाजिक संदर्भ में व्यक्ति को देखा–समझा जाता है।[6] जनसंचार माध्यमों का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है विज्ञापन। यह विज्ञापन लोगों को नये उत्पाद से परिचित कराता है। यह विज्ञापन लोगों को सूचित करने की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। जब जनसंचार माध्यमों का विकास हो रहा था तब जनसंस्कृति भी उभर रही थी। जनसंचार माध्यम हमारे जीवन में एकरूपता विकसित कर रहे थे। इसका सम्बन्ध उपयोग और उपभोग से रहा था। ऐसे परिदृश्य को गढने में विज्ञापन की भूमिका बहुत ज्यादा रही है। मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि जनसंचार माध्यमों के विज्ञापन, लेख, इंटरनेट आदि धुम्रपान, असुरक्षित यौन सम्बन्ध, मादक द्रव्य व्यसन और उनसे सम्बन्धित खतरों एडस, कैंसर आदि के लक्षणों के प्रति आगाह करते हैं।[7] इस सम्बन्ध में जनसंचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। यहां यह भी आशंका व्यक्त की जाती है कि जनसंचार माध्यमों की सकारात्मक भूमिका उनके नकारात्मक और परस्पर विरोधी विचारों के कारण प्रभावी नहीं भी हो सकती है। यह बात भी सामान्य रूप से संरचनात्मक प्रकार्यवादी नजरिये से स्पष्ट की जा सकती है कि समाज के सदस्यों के समाजीकरण में भी जनसंचार माध्यमों की प्रभावशाली भूमिका होती है। आज जनसंचार माध्यमों से हम पाश्चात्य संगीत, नृत्य, फैशन, फास्ट फूड और व्यवहार प्रतिमानों को अपना रहे हैं। डिसकवरी, नेशनल ज्योग्राफिक चैनल, और हिस्ट्री जैसे चैनल हमारा ज्ञान वर्द्धन करते हैं, मनोरंजन करते हैं और उसी तरह से हमें निर्देशित भी करते हैं।[8] यह भी जनसंचार माध्यमों का सकारात्मक योगदान है।

यह सही है कि जनसंचार माध्यम हमारे समाज के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। हम किसी ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते हैं जहां कि इनकी भूमिका नहीं हो। संरचनात्मक प्रकार्यवादी के इस नजरिये से कि समाज में मूल्यों के प्रति सहमति है, एकता है और यही समाज व्यवस्था का आधार है, मार्क्सवादी अथवा संघर्षवादी विचारधारा सहमत नहीं है। यही कारण है कि जनसंचार माध्यमों को नकारात्मक ढंग से भी देखा गया है।

समकालीन विचारकों में हैबरमास का यह मानना था कि कॉफी हाउस आदि से विकसित पब्लिक स्फेयर या सार्वजनिक क्षेत्र इस दृष्टि से तो महत्वपूर्ण रहा है कि इसने विविधतापूर्ण मुददों को सामने लाने का प्रयास किया है। लोकतंत्र की दृष्टि से भी यह उपयुक्त है। इसके बावजूद गिडडेन्स ने यह बताया है कि आज लोकतंत्र में बहुत कुछ प्रबंधित है, नियोजित है और व्यावसायिक हित आज लोगों या पब्लिक के उपर विजय प्राप्त कर चुके हैं। इसमें लोगों के व्यवहार को नियंत्रित और अपने अनुसार परिवर्तित किया जाता है।[9] विज्ञापन की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका है। ज्यां बॉड्रिलार्ड ने आधुनिक समय में इस बात की चर्चा की है कि किस तरह से हम एक ऐसी दुनिया में रहने लगे हैं जहां कि अति यथार्थता है। विज्ञापन और प्रतिकृति हमें वास्तविकता से दूर ले जाते हैं। हम एक अवास्तविक अयथार्थ दुनिया में रह रहे हैं और इसमें समकालीन उपभोक्तावादी समाज की बहुत बड़ी भूमिका है। यह देखा जा रहा है कि हम वास्तविक उपभोग की जगह प्रतीकात्मक उपभोग की ओर मुड़ गये हैं। इन आयामों में एस.एल दोषी ने बाड्रिलार्ड के चिंतन को अभिव्यक्त किया है।[10] जनसंचार माध्यमों के तीव्र विकास के कारण एक स्थिति यह भी उत्पन्न हो गयी है कि हमारे चिंतन में समानता आ गयी है। यह बात सामान्य रूप से हम महसूस करते हैं कि हमारी बातचीत का संदर्भ जनसंचार माध्यमों के द्वारा उठाये गये मुद्दे ही होते हैं। हम ज्यादातर विज्ञापन और अन्य मामलों में उन्हीं विमर्शों से प्रभावित होते हैं जो कि जनसंचार माध्यमों में चर्चित होते हैं। ऐसे में हमारे पास मौलिक और स्वाभाविक चिंतन की संभावना निश्चित रूप से कम हो जाती है। वाल्टर लिपमैन ने एक प्रश्न यह उठाया था कि जब सब लोग एक ही तरह सोचने लगते हैं, तब किसी के सोचने का कोई मतलब नहीं रह जाता है।[11] आज के दौर में जनसंचार माध्यमों के विकास से यह संप्रेषणीयता और मौलिकता के प्रश्न भी महत्वपूर्ण हो गये हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी और अमेरिका में समान रूप से लोकप्रिय विचारधारा फ्रैंकफर्ट विचारधारा ने भी जनसंचार माध्यमों और जनसंस्कृति की अपनी चर्चा में यह स्वीकार किया कि जनसंस्कृति कहीं न कहीं हमारी मौलिकता को समाप्त कर रही है और हम कहीं न कहीं निष्क्रिय हो रहे हैं। एर्डोनों ने जॉज और अन्य संगीत शैलियों और उसके मानकीकरण के प्रयासों को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा कि इससे लोगों को एक विशेष ढंग से निष्क्रिय बनाया जा रहा है और वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को मजबूत किया जा रहा है। इससे समाज में अलगाव भी बढ रहा है।[12] इस तरह से हम सामान्य रूपसे यह कह सकते हैं कि जनसंचार माध्यमों के साथ सबकुछ व्यवस्थित और संरचित नहीं है। इसके कुछ नकारात्मक आयाम भी हैं और उससे भी हमें परिचित होना ही होगा। एक स्वस्थ चर्चा में हम इसे नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं। हम जनसंचार माध्यमों के एक महत्वपूर्ण आयाम पत्रकारिता को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं। पत्रकारिता की विश्वसनीयता एवं प्रासंगिकता का बरकरार रहना आवश्यक है। शशिकान्त राय ने अपने एक शोध आलेख में किशन पटनायक को उदधृत करते हुए बताया है कि नई आर्थिक नीति तथा आधुनिक संचार माध्यमों के संयोग से एक नये बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हो रहा है। इस वर्ग के_पहले उभार में वे महानगरीय बुद्धिजीवी हैं जो अपने को विज्ञापन का हिस्सा बनाने के लिए और करोड़ों साधारण जनों को अप्रासंगिक मानने के लिए तैयार हो गये हैं।[13] अगर जनसंचार माध्यम में जन की इस तरह से उपेक्षा की जायेगी तो उसके जनसंचार होने पर ही प्रश्न चिन्ह लग रहा है। एक बात यह भी देखने में आ रही है कि आज के दौर में विविध चैनलों में बाजारवाद और आपसी प्रतिस्पर्द्धा के दौर में तनावपूर्ण

स्थिति और प्रवृति विकसित हो रही है, हम इसे भी नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं। डायचे वेले में आमिर अंसारी ने कहा है कि भारत में न्यूज चैनल अब एक दूसरे को नीचा दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। एक चैनल अपने प्रतिद्वंदी को अफवाह फैलाने वाला बता रहा है तो वहीं प्रतिद्वंदी चैनल दूसरे पेड न्यूज के रूप में एक तरफा खबर चलाने का आरोप लगा रहा है।[14] हमें जनसंचार माध्यमों के सम्बन्ध में इन पहलुओं पर भी विचार करने की आवश्यकता है। यह स्थितियां स्पष्ट करती हैं कि जनसंचार माध्यमों के केवल सकारात्मक पहलुओं की बात नहीं की जा सकती है। उसके नकारात्मक पहलू भी हैं।

जनसंचार माध्यमों की भूमिका को जब हम नारीवादी नजरिये से देखते हैं तो हमारा प्रयास यह जानना होता है कि स्त्री को कैसे प्रस्तुत किया जाता है, उसकी छवि को कैसे नकारात्मक ढंग से गढ़ा जाता है, विज्ञापनों की क्या भूमिका है, हमें इन प्रश्नों पर भी विचार करना होगा। जब हम समाज की चर्चा करते हैं तो इसमें पुरूष भी हैं, विविध प्रजातियां भी हैं और विविधतापूर्ण भूमिकाएं भी हैं। पुराने अध्ययनों में यह स्पष्ट किया गया है कि आमतौर पर स्त्री पुरूष जो स्टीरियोटाइप्स हैं उसे हम यहां भी देख सकते हैं। पुरूषों को कुशल सर्जक, जासूस, अन्वेषक आदि के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, स्त्रियों को नहीं। विज्ञापनों में भी ऐसा ही है। पुरूष और स्त्रियों को इसी तरह से प्रस्तुत किया जाता रहा है। एक महत्वपूर्ण आयाम सौंदर्य का है। सौंदर्य का यथार्थ और मिथक की चर्चा नाओमी वुल्फ ने की है। सौंदर्य को कैसे पुरूषवादी नजरिये से गढ़ा जाता है, अभिव्यक्त किया जाता है, एक विशेष देहयष्टि को कैसे महत्व दिया जाता है, हमें यह समझना होगा। मैकियोनिस ने अपनी चर्चित कृति सोशियोलॉजी में इसकी चर्चा की है।[15] एक अन्य नारीवादी विचारक जॉन जैकब ब्रमबर्ग ने अपनी कृतियों में सौंदर्य के इन पहलुओं की चर्चा की है। उनकी प्रमुख कृतियां हैं– फास्टिंग गर्ल्स (1988), बॉडी प्रोजेक्ट(1997)। उन्होंने यह भी बताया है कि किस प्रकार से पत्र–पत्रिकाएं एक विशेष सौंदर्य मानक को गढ़ते हैं और लोग उन्हें पाने के प्रयास करते रहते हैं।[16] यह इस बात का उदाहरण है कि नारीवादी नजरिये से भी हमें जनसंचार माध्यमों को देखने की आवश्यकता है। एक स्त्री निश्चित रूप से किसी की पत्नी हो सकती है। इसके साथ–साथ उसका निजी व्यक्तित्व और उपलब्धि भी हो सकती है। अगर जनसंचार माध्यमों में स्त्री के निजी व्यक्तित्व और उपलब्धि को नजरअंदाज किया जाता है तो यह उचित नहीं है। प्रदीप श्रीवास्तव ने अपने एक लेख उत्पीड़न और अनदेखी का स्त्री–पक्ष में इस विषय पर चर्चा की है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि पुरूषवादी सोच न सिर्फ सरकारी योजनाओं में बल्कि मुख्यधारा मीडिया में भी जड़ जमाये हुये है। विकासात्मक अर्थशास्त्र के लिए अभिजीत बनर्जी के साथ संयुक्त रूपसे पुरस्कृत होने वाली एस्थर डफलो को उनकी पत्नी के रूप में भारतीय मीडिया में ज्यादा तरजीह दी गयी। श्रीवास्तव का कहना यह है कि यह मर्दवादी सोच महिलाओं को कमतर आंकती है और उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक बनने पर मजबूर करती है।[17] इस प्रकार नारीवादी परिप्रेक्ष्य नारीवादी मुददों और मीडिया के अर्न्तसम्बन्धों को हमारे समक्ष रखने का प्रयास करता है।

जनसंचार माध्यमों के अन्य परिप्रेक्ष्यों में उत्तर–आधुनिक और अन्तःक्रियावादी परिप्रेक्ष्य हैं। यह शोध आलेख मुख्य रूपसे तीन ही परिप्रेक्ष्यों पर केन्द्रित है। इस शोध आलेख में मुख्य रूप से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जनसंचार माध्यमों की आवश्यकता हमारे समाज को है इसमें कहीं कोई दो राय नहीं है। इसके बावजूद

हमें यह समझना होगा कि उसके कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं और स्त्री विमर्श के नजरिये से उसकी सीमाएं भी हैं। हम अगर विविध पहलुओं को अपनी चर्चा में शामिल करेंगें तो समाजशास्त्रीय नजरिया ज्यादा समन्वित और संतुलित हो सकता है। यह सही है कि इस शोध आलेख में समकालीन सोशल मीडिया की चर्चा नहीं की गयी है, यह इस शोध आलेख की सीमा है।

संदर्भ–

1. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी, (2004), पृ–396।
2. कुप्पुस्वामी, बी (1975) सोश्यल चेंज इन इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
3. गिड्डेन्स, एंथनी (2002), सोशियोलॉजी, चौथा संस्करण, पॉलिटि प्रेस, कैम्ब्रिज, पृ–480।
4. शैफर, रिचर्ड टी. (2011), सोशियोलॉजी, नौवां संस्करण, टाटा मैक्ग्रा हिल, पृ–136।
5. श्रीवास्तव, सविता कुमारी (2014), बाबूराव विष्णु पराड़कर और माखन लाल चतुर्वेदी की हिन्दी पत्रकारिता का तुलनात्मक मूल्यांकन, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ–160–161।
6. शैफर, पूर्व उद्धृत, पृ–137।
7. बैरॉन, रॉबर्ट ए. (2009) सॉयकॉलोजी, पांचवा संस्करण, पीयरसन, पृ–525।
8. अब्राहम, फ्रांसिस एम (2019), कंटेमपररी सोशियोलॉजी, ऑक्सफोर्ड, पृ–89।
9. गिड्डेन्स, एंथनी पूर्व उदधृत–462।
10. दोषी, एस. एल.(2003), मॉडर्निटी, पोस्ट–मॉडर्निटी एण्ड नियोसोशियोलॉजिकल थ्योरी, रावत प्रकाशन, जयपुर, पृ–268–269।
11. गाबा, ओमप्रकाश (2017) राजनीति विज्ञान विश्वकोष, मयूर पेपरबैक्स, नोयेडा, पृ–559।
12. वालेस, रूथ ए. एवं वुल्फ एलीसन (2008), कंटेमपररी सोशियोलॉजिकल थ्योरी, प्रेंटिस हॉल आफ इंडिया, पृ–105।
13. राय, शशिकान्त (2012) पत्रकारिता की विश्वसनीयता एवं प्रासंगिकता, द जर्नलिस्ट, जनवरी–मार्च, 2012, ISSN:2231–2943।
14. दैनिक हिंदुस्तान इलाहाबाद 8 अक्टूबर, 2020 पृ–10।
15. मैकियोनिस, जॉन जे. (2009), सोशियोलॉजी, दसवां संस्करण, पीयरसन, पृ–331–332।
16. डिलने, टिम (2008), कंटेमपररी सोशल थ्योरी, पीयरसन, पृ–221–222।
17. जनसत्ता, दैनिक समाचार पत्र, लखनउ–6 अक्टूबर,2020, पृ–6।

****